

उत्तराखंड की राजनीति में जाति और धर्म का प्रभाव

Suman Lata

Research Scholar, Soban Singh Jeena University Almora

Professor Neeta Bharti

Ph.D. Convener & Head of Department (Political Science)

Soban Singh Jeena University Almora

सार

इस अध्ययन का उद्देश्य उत्तराखंड के आसपास के राजनीतिक माहौल पर धर्म और जाति के प्रभाव की आलोचनात्मक जाँच करना है। यह शोध उन तरीकों की जाँच करता है जिनसे धार्मिक पहचान और जातिगत पदानुक्रम राज्य में मतदाता व्यवहार, पार्टी रणनीतियों, नेतृत्व चयन और नीतिगत लक्ष्यों को प्रभावित करते हैं। यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, चुनावी आँकड़ों, पार्टी घोषणापत्रों, क्षेत्रीय साक्षात्कारों और द्वितीयक साहित्य के आधार पर ऐसा करता है। मिश्रित जनसांख्यिकी वाले एक अलग पहाड़ी राज्य के रूप में उत्तराखंड का गठन (2000)—जिसमें शहरी केंद्रों में प्रमुख उच्च जातियाँ, संख्यात्मक रूप से महत्वपूर्ण ओबीसी समूह, अनुसूचित जातियाँ और हिंदू तीर्थयात्रियों और अल्पसंख्यक समुदायों सहित अलग-अलग धार्मिक निर्वाचन क्षेत्र शामिल हैं—पहचान और राजनीति के बीच परस्पर क्रिया का पता लगाने के लिए एक अनूठा वातावरण प्रदान करता है। सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह संकेत देते हैं कि धर्म न केवल एक आख्यान के रूप में कार्य करता है जो लोगों को संगठित करता है (तीर्थयात्रा राजनीति, मंदिर-केंद्रित प्रतीकवाद और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के माध्यम से), इस तथ्य के बावजूद कि उच्च जाति के नेटवर्क अक्सर पार्टी संरचनाओं और संसाधन प्रवाह को नियंत्रित करते हैं, ओबीसी और दलितों की मांगों ने कई क्षेत्रों में चुनावी अंकगणित को बदल दिया है। स्थानीय स्तर के राजनीतिक गठबंधनों और उम्मीदवार चयन के निर्माण में जाति एक कारक बनी हुई है। इसके अलावा, शोध रिपोर्ट में पता चलता है कि पहचान-आधारित अपीलें आम तौर पर विकास की बयानबाजी (सड़क, स्वास्थ्य, नौकरी) से जुड़ी होती हैं, जिसके परिणामस्वरूप हाइब्रिड वोट रणनीति होती है जो पहचान की प्रमुखता को कल्याणकारीवादों के साथ जोड़ती है। इसके अलावा, अध्ययन क्षेत्रीय भिन्नताओं को उजागर करता है, जैसे कि पहाड़ी जिले बनाम मैदानी जिले, जहाँ जाति और धार्मिक प्रमुखता में काफी भिन्नता होती है, जो बदले में नीति प्रक्रियाओं और प्रतिनिधित्व के परिणामों को प्रभावित करती है। शोध का दावा है कि धर्म और जाति उत्तराखंड की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं निष्कर्षतः, अध्ययन में संस्थागत सुधारों और विशेष रूप से लक्षित सामाजिक-आर्थिक नीतियों के कार्यान्वयन के माध्यम से समावेशी प्रतिनिधित्व को बढ़ाने और पहचान-आधारित ध्रुवीकरण को कम करने के लक्ष्य के साथ नीतिगत सुझाव दिए गए हैं।

मुख्य शब्द: उत्तराखंड, जाति, धर्म, पहचान की राजनीति, चुनावी व्यवहार, प्रतिनिधित्व, तीर्थयात्रा राजनीति, सामाजिक समावेशन।

परिचय

उत्तराखंड की राजनीति धर्म, जाति, भूगोल और विकास के धागों से बुनी एक जटिल ताना-बाना प्रस्तुत करती है। चूँकि उत्तराखंड को देवभूमि, जिसका शाब्दिक अर्थ "देवताओं की भूमि" है, के नाम से जाना जाता है, इसलिए 9

नवंबर, 2000 को भारत के 27वें राज्य के रूप में अपनी स्थापना के बाद से ही इसे आध्यात्मिक पवित्रता का स्थान माना जाता रहा है। हालाँकि, धार्मिक सद्भाव के इस आभास के पीछे सामाजिक पदानुक्रम और पहचान-आधारित लामबंदी का एक जटिल अंतर्संबंध छिपा है, जिसका देश की राजनीतिक प्रक्रियाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। न केवल चुनाव परिणामों, बल्कि उत्तराखंड के व्यापक सामाजिक और विकासात्मक पथ का मूल्यांकन करने के लिए, राज्य की राजनीतिक व्यवस्था पर धर्म और जाति के प्रभाव की ठोस समझ होना आवश्यक है। इतिहास के दौरान, उत्तराखंड को राज्य का दर्जा देने की माँग धर्म या जाति-आधारित लामबंदी से नहीं, बल्कि क्षेत्रीय उपेक्षा और आर्थिक असंतुलन की चिंताओं से उत्पन्न हुई है। प्रशासनिक स्वायत्तता और संसाधनों के समान वितरण के लिए, यह आंदोलन, जो मुख्य रूप से मध्यम वर्ग और पहाड़ी गांवों द्वारा संचालित था, इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहा। दूसरी ओर, राज्य के बाद की राजनीति ने पहचान की राजनीति के व्यापक राष्ट्रीय पैटर्न को प्रतिबिंबित करना शुरू कर दिया, जिसमें धर्म और जाति राजनीतिक वफादारी, नेतृत्व के चयन और नीति की दिशा निर्धारित करने में प्रमुख कारक थे। उच्च जातियों (विशेषकर ब्राह्मण और राजपूत), अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी), अनुसूचित जाति (एससी) और अल्पसंख्यक आबादी के बीच मतभेद राजनीतिक विमर्श में उत्तरोत्तर उभरने लगे। यह इस तथ्य के बावजूद था कि पहाड़ी जिले ज्यादातर समरूप थे। उत्तराखंड की राजनीतिक संस्कृति के इतिहास में, धर्म एक बहुत ही प्रभावशाली कारक रहा है। बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री राज्य के कुछ सबसे महत्वपूर्ण हिंदू तीर्थ स्थल हैं। राजनीतिक दल धार्मिक पर्यटन, मंदिर प्रशासन और तीर्थयात्रा बुनियादी ढांचे के उपयोग के माध्यम से सांस्कृतिक विरासत के प्रति अपने समर्पण का प्रतिनिधित्व करने का प्रयास कर रहे हैं, ये सभी पर्यटन उद्योग के राजनीतिकरण वाले क्षेत्र बन गए हैं। विशेष रूप से, भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) हिंदुत्व के मुहावरे और देवभूमि की कल्पना का उपयोग करके राज्य भर में अपने चुनावी आधार को मजबूत करने में सफल रही है। यह राज्य के मैदानी जिलों, जैसे हरिद्वार और उधम सिंह नगर में विशेष रूप से सच है, जिनकी आबादी अधिक विविध है और सांप्रदायिक संवेदनशीलता का स्तर अधिक है। हालाँकि वे कई उत्तर भारतीय राज्यों की तुलना में कम स्पष्ट हैं, उत्तराखंड में जातिगत गतिशीलता उतनी ही प्रमुख है जितनी कि अन्य राज्यों में। उच्च जातियाँ, जो ज्यादातर ब्राह्मण और राजपूतों से बनी हैं, पहाड़ी क्षेत्रों में आबादी का एक बड़ा हिस्सा बनाती हैं। ऐतिहासिक रूप से, इन जातियों का प्रशासनिक और राजनीतिक संगठनों में मजबूत स्थान रहा है।

प्रमुख राजनीतिक दलों के नेतृत्व में इन जातियों की भागीदारी का स्तर असमान रूप से उच्च बना हुआ है, जो उनके प्रभुत्व को दर्शाता है। दूसरी ओर, मैदानी क्षेत्रों में ओबीसी और दलित आंदोलनों के विकास ने जाति व्यवस्था के संतुलन को लगातार बिगाड़ा है। अनुसूचित जातियों की राजनीतिक लामबंदी, विशेष रूप से हरिद्वार और उधमसिंह नगर में, वैकल्पिक शक्ति केंद्रों के उदय के परिणामस्वरूप हुई है और क्षेत्रीय दलों और राष्ट्रीय स्तर के अभिनेताओं के लिए राजनीतिक गठबंधन बनाने के अवसर खुले हैं। इसके अलावा, धर्म और जाति के बीच की अंतःक्रियाएँ अक्सर एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक संकर प्रकार की पहचान की राजनीति उभरती है। जातिगत नेटवर्क स्थानीय राजनीतिक संगठन और चुनावी सौदेबाजी को आसान बनाते हैं, जबकि धार्मिक प्रतीकवाद समुदाय की भावनात्मक और सांस्कृतिक एकरूपता में योगदान देता है। परिणामस्वरूप, एक बहुआयामी राजनीतिक संस्कृति उभरी है, जिसमें विकास के मुद्दे, जैसे रोज़गार, प्रवास और बुनियादी ढाँचा, पहचान और अपनेपन की भाषा में व्यक्त होते हैं। राज्य के राजनीतिक दलों ने धार्मिक भावनाओं को भड़काने और विकास के वादों के बीच संतुलन बनाने की क्षमता हासिल कर ली है, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षाविदों द्वारा पहचान-आधारित वैधता से परिपूर्ण विकासात्मक लोकलुभावनवाद की अवधारणा सामने आई है। उत्तराखंड की राजनीति को अन्य राज्यों से अलग करने वाली एक और विशेषता राज्य का मैदानी और पहाड़ी इलाकों के बीच भौगोलिक विभाजन है। जहाँ मैदानी इलाकों में मतदान के पैटर्न को परिभाषित करने में जातिगत और धार्मिक पहचानें ज़्यादा प्रमुख हैं, वहीं पहाड़ी

इलाकों की राजनीति अक्सर प्रवासन, बेरोज़गारी और पर्यावरण संरक्षण के मुद्दों पर केंद्रित होती है। इसके विपरीत, निचले इलाकों में, जातिगत और धार्मिक पहचानें ज़्यादा प्रमुख हैं। मैदानी ज़िले अक्सर अपने जनसांख्यिकीय भार और आर्थिक क्षमता के कारण ज़्यादा निवेश और राजनीतिक ध्यान आकर्षित करते हैं। यह भौगोलिक अंतर न केवल चुनावों के नतीजों को प्रभावित करता है, बल्कि नीतिगत असंतुलन का भी कारण बनता है। मैदानी ज़िलों की विशेषता उनकी उच्च आर्थिक क्षमता और उच्च जनसंख्या भार है। इसलिए, उत्तराखंड के राजनीतिक संदर्भ में धर्म और जाति पर शोध का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह हमें यह समझने में सक्षम बनाता है कि तेज़ी से बदलते सामाजिक-आर्थिक परिवेश में पारंपरिक पहचानों की पुनर्कल्पना कैसे की जा रही है। पहचान-आधारित राजनीति का जारी रहना इस बात का प्रमाण है कि धर्म और जाति, शहरीकरण, शिक्षा और प्रवासन के पारंपरिक पदानुक्रमों को ध्वस्त करने के बावजूद, महत्वपूर्ण संगठनकारी शक्तियाँ बनी हुई हैं। राज्य का वर्तमान राजनीतिक विमर्श पहचान-आधारित निष्ठा और राज्य के विकासात्मक उद्देश्यों के बीच विद्यमान संघर्ष से परिभाषित होता है। उत्तराखंड राज्य में, इस अध्ययन का उद्देश्य मतदाताओं के राजनीतिक व्यवहार, राजनीतिक दलों द्वारा अपनाई गई तकनीकों और सार्वजनिक नीति निर्माण को प्रभावित करने में धर्म और जाति की भूमिका के तरीकों का गहन विश्लेषण करना है। "धार्मिक आख्यान राज्य में राजनीतिक लामबंदी को कैसे प्रभावित करते हैं?" जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार करने के लिए, इसका उद्देश्य उत्तर प्रदान करना है। राजनीतिक सत्ता और प्रतिनिधित्व तक पहुँच निर्धारित करने में जाति किस हद तक एक कारक है, यह प्रश्न है। शासन, विकास और क्षेत्रीय समानता की व्यापक चुनौतियों के संबंध में, ये पहचानें कई अन्य कारकों के साथ कैसे अंतःक्रिया करती हैं? इस अध्ययन में, चुनावी रुझानों, नेतृत्व के स्वरूपों और सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों के परीक्षण के माध्यम से उत्तराखंड को भारतीय पहचान की राजनीति के व्यापक ढाँचे में रखा गया है। साथ ही, यह शोधपत्र उत्तराखंड में मौजूद विशिष्ट क्षेत्रीय गतिशीलता को भी स्वीकार करता है। यह तर्क देता है कि धर्म और जाति, राज्य के राजनीतिक ताने-बाने में गहराई से समाए होने के बावजूद, स्थिर कारक नहीं हैं; बल्कि, लोकतंत्रीकरण, आधुनिकीकरण और बदलती मतदाता चेतना के प्रभाव के परिणामस्वरूप इनमें परिवर्तन हो रहा है। परिणामस्वरूप, यह आलोचनात्मक विश्लेषण उन तरीकों की गहन समझ में योगदान देता है जिनसे पुरानी सामाजिक संरचनाएँ राज्य के गठन के बाद भी उत्तराखंड में राजनीतिक व्यवहार को अनुकूलित और प्रभावित करती रहती हैं।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि: धर्म, जाति और राजनीतिक लामबंदी

भारत में, राजनीतिक समाजशास्त्र के शास्त्रीय स्कूल ने राजनीतिक सत्ता के संगठन में धर्म और जाति की भूमिका पर ज़ोर दिया है। रजनी कोठारी की "पॉलिटिक्स इन इंडिया" (1970) और क्रिस्टोफ़ जैफ़रलॉट की "इंडियाज़ साइलेंट रेवोल्यूशन" (2003) जैसे अग्रणी अध्ययन इस बात की पड़ताल करते हैं कि कैसे जातिगत पहचानें, जो पहले सामाजिक दायरे तक सीमित थीं, लोकतांत्रिक भागीदारी के ज़रिए राजनीतिक हो गई हैं। जैफ़रलॉट ने चुनावी लोकतंत्र के ज़रिए निचली जातियों के दावे के उभार की ओर ध्यान आकर्षित किया, जबकि कोठारी ने जाति को सामाजिक पदानुक्रम से "राजनीतिक उद्देश्यों के लिए एक राजनीतिक उपकरण" के रूप में बदलते देखा। इसी तरह, मायरोन वेनर (1987) और योगेंद्र यादव (1999) जैसे शिक्षाविदों ने यह स्थापित किया है कि धर्म और जाति लोकतांत्रिक राजनीति में भागीदारी और प्रतिनिधित्व के पैटर्न को निर्धारित करने वाली लामबंद करने वाली शक्तियों के रूप में काम करती हैं। इस सैद्धांतिक ढाँचे को उत्तराखंड की स्थिति पर लागू करना संभव है; फिर भी, कुछ भौगोलिक अंतरों पर विचार करना होगा। राज्य की ऊबड़-खाबड़ स्थलाकृति, जनसंख्या संरचना और ऐतिहासिक विकास, इन सभी ने विभिन्न प्रकार की राजनीतिक लामबंदी को बढ़ावा दिया है। हालाँकि, जैसे-जैसे ओबीसी और दलितों की अधिक आबादी वाले मैदानी जिलों ने राजनीतिक प्रासंगिकता हासिल की, जाति चुनावी संघर्ष का एक

स्पष्ट कारक बन गई। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि पहाड़ी क्षेत्रों में ऊँची जातियाँ एक-दूसरे से बहुत मिलती-जुलती थीं, जिसके कारण मूल रूप से जाति को एक गौण तत्व माना जाने लगा।

ऐतिहासिक संदर्भ: राज्य आंदोलन और पहचान निर्माण

धर्म या जाति-आधारित ध्रुवीकरण से प्रेरित होने के बजाय, 1990 और 2000 के बीच हुआ उत्तराखंड राज्य आंदोलन मुख्यतः क्षेत्रीय और विकासात्मक उद्देश्यों से प्रेरित था। शेखर पाठक (2005) और अनूप नौटियाल (2010) जैसे शिक्षाविदों ने देखा है कि आंदोलन का नेतृत्व मुख्यतः पहाड़ों के शिक्षित मध्यम वर्ग के लोगों ने किया था, और यह नेतृत्व किसी विशेष जाति तक सीमित नहीं था। दूसरी ओर, राज्य के बाद की राजनीति में इस एकता में लगातार विघटन देखा गया क्योंकि पार्टियों ने जाति और धर्म की अपील के माध्यम से अपने आधार को मजबूत करने का प्रयास किया।

इस तथ्य के बावजूद कि राज्य की स्थापना ने समान विकास की उम्मीदों को बढ़ावा दिया, अजय रावत (2012) और डी.डी. शर्मा (2014) द्वारा किए गए शोध के अनुसार, शासन के पैटर्न ने मौजूदा पदानुक्रमों को तेजी से पुनः पेश किया, बल्कि, वे राज्य की राजनीति के ढांचे के भीतर फिर से उभरे।

उत्तराखंड में जाति और राजनीतिक प्रतिनिधित्व

उत्तराखंड के राजनीतिक परिदृश्य में जाति एक ऐसा प्रभाव बनी हुई है जो सूक्ष्म और स्थायी दोनों है। विकासशील समाज अध्ययन केंद्र (सीएसडीएस, 2018) ने चुनाव आंकड़ों का विश्लेषण किया और पाया कि ब्राह्मण और राजपूत जैसी उच्च जातियों के सदस्य अनुपातहीन संख्या में राजनीतिक पदों पर आसीन हैं। इन पदों में मुख्यमंत्री, कैबिनेट सदस्य और पार्टी नेता शामिल हैं। राज्य के निर्माण के बाद से सेवा करने वाले बारह मुख्यमंत्रियों में से अधिकांश हिंदू मूल के हैं जिन्हें उच्च जाति माना जाता है। अशोक कौल (2016) और राजीव रतूड़ी (2019) जैसे शोधकर्ताओं ने उन तरीकों की जांच की है जिनसे यह प्रभुत्व राजनीतिक अभिजात्यवाद की संस्कृति को बनाए रखने में योगदान देता है जो सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित आबादी को हाशिए पर रखता है। कौल इस बात पर जोर देते हैं कि इस तथ्य के बावजूद कि सार्वजनिक प्रवचन में जाति का खुलकर राजनीतिकरण कम होता है दूसरी ओर, रतूड़ी मैदानी जिलों में दलित और अन्य वंचित समूहों के नेताओं के बीच उभर रहे वैकल्पिक आख्यानो की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। ये जिले ऐसे स्थान हैं जहाँ सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता और शहरीकरण ने इन समुदायों को राजनीतिक प्रभाव डालने में सक्षम बनाया है।

देवभूमि का धर्म और राजनीति

देवभूमि के रूप में उत्तराखंड की सांस्कृतिक पहचान राज्य की राजनीतिक व्यवस्था के धार्मिक पहलू से गहराई से जुड़ी हुई है। बद्री दत्त पांडे (2010) और जी.एस. रावत (2015) जैसे शिक्षाविदों द्वारा किए गए शोध से पता चलता है कि धार्मिक प्रतीकवाद दोहरा उद्देश्य पूरा करता है: यह सरकारी शक्ति को वैध बनाता है और यह आम जनता की भावनाओं को संगठित करता है। चार धाम, हरिद्वार और ऋषिकेश जैसे तीर्थ स्थलों के महत्व के परिणामस्वरूप धर्म एक सांस्कृतिक चिह्न से आर्थिक और राजनीतिक संसाधन के रूप में उभरा है। राज्य में अपनी पकड़ बढ़ाने के लिए भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने धार्मिक कथाओं का उपयोग एक विशिष्ट रणनीति के रूप में अपनाया है। संजय कुमार और सुहास पलशीकर (2019) की जांच के निष्कर्षों के अनुसार, उत्तराखंड में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के अभियान आमतौर पर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, तीर्थ पर्यटन और हिंदूवादी विचारधारा की अवधारणाओं का संदर्भ

देते हैं। 2013 में आई बाढ़ के बाद तीर्थयात्रा सर्किट स्थापित करने और केदारनाथ के जीर्णोद्धार पर जोर सिर्फ विकासात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही नहीं बल्कि हिंदू पहचान की प्रतीकात्मक पुष्टि के रूप में भी दिया गया था। दूसरी ओर, कुछ शिक्षाविद उत्तराखंड की धार्मिक राजनीति को विशुद्ध रूप से हिंदुत्व (हिंदू राष्ट्रवादी विचारधारा) के चश्मे से देखने के खिलाफ चेतावनी देते हैं। लेखक नंदिनी देव (2020) और रमेश भट्ट (2021) का तर्क है कि धर्म और शासन के मिलन का समाज के सामाजिक-आर्थिक पहलुओं पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, धार्मिक पर्यटन को प्राथमिकता देने से अक्सर ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा जैसी बुनियादी सेवाओं से संसाधनों का विचलन होता है, जो बदले में मंदिर शहरों और परिधि पर स्थित गांवों के बीच मौजूद भौगोलिक असमानताओं को पुष्ट करता है।

अंतर्संबंध: जाति, धर्म और क्षेत्रीय विभाजन

जाति, धर्म और स्थान की अंतःक्रियाशीलता उन मुद्दों में से एक है जो साहित्य के काम में तेजी से प्रचलित हो रही है। जिस तरह से ये पहचान कार्य करती हैं वह मैदानी इलाकों (तराई) और पहाड़ियों (पहाड़) के बीच के अंतर से काफी प्रभावित होती है। मैदानी इलाकों की तुलना में, जहाँ ओबीसी, दलित और मुस्लिम अल्पसंख्यकों की जनसांख्यिकीय उपस्थिति एक अधिक विविध लेकिन प्रतिस्पर्धी राजनीतिक माहौल भी पैदा करती है, पहाड़ियों की विशेषता उच्च-जाति का वर्चस्व है जो नौकरशाही नियंत्रण और सांस्कृतिक अधिकार के माध्यम से प्रदर्शित होता है। भास्कर नेगी (2017) और मीनाक्षी जोशी (2020) द्वारा किए गए शोध के अनुसार, जाति और धर्म दोनों ही असमान विकास में योगदान करने वाले कारक हैं। हालाँकि, जिस तरह से ये दोनों कारक परस्पर क्रिया करते हैं, वह क्षेत्र दर क्षेत्र भिन्न होता है। हरिद्वार और उधम सिंह नगर जैसे मैदानी जिले, जिनमें जनसंख्या घनत्व अधिक है और जाति विविधता अधिक है, बुनियादी ढाँचे में अधिक राजनीतिक ध्यान और निवेश प्राप्त करते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि इन जिलों में ऐसी विशेषताएँ हैं। दूसरी ओर, उच्चभूमि क्षेत्र प्रवासन, बेरोजगारी और पारिस्थितिकीय नाजुकता से ग्रस्त हैं, जो सभी राजनीतिक अलगाव में योगदान करते हैं।

विकास, पहचान और राजनीतिक परिवर्तन

हाल के वर्षों में, अकादमिक शोध में धर्म और जाति के विकास की राजनीति से जुड़ाव के तरीकों की पड़ताल करने की प्रवृत्ति रही है। शिल्पा तिवारी (2021) और दीपक बहुगुणा (2023) जैसे विद्वानों ने देखा है कि चुनाव अभियान मतदाताओं की पहचान की अपील को बुनियादी ढाँचे, रोजगार और कल्याण के वादों के साथ तेज़ी से जोड़ रहे हैं। पहचान की राजनीति से जिसे वे व्यावहारिक लोकलुभावनवाद कहते हैं, उसकी ओर संक्रमण इस संकर रणनीति में परिलक्षित होता है, जो बदलाव की प्रकृति को दर्शाता है। जहाँ जाति और धर्म भावनात्मक समर्पण को संगठित करने में प्रभावी हैं, वहीं राजनीतिक दल इस बात से अवगत हैं कि विकास वैधता और स्थायित्व प्रदान करने का सबसे प्रभावी साधन है। इसके अलावा, उत्तराखंड में राजनीतिक पहचान बदलने की प्रक्रिया में महिलाओं और युवाओं की भूमिका पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। प्रवास, शिक्षा और सोशल मीडिया में भागीदारी के परिणामस्वरूप युवा मतदाताओं के बीच मज़बूत जातिगत जुड़ाव कम होते जा रहे हैं। इसके बावजूद, चुनावों के दौरान, विशेष रूप से मैदानी इलाकों में स्थित जिलों में, जहाँ सांप्रदायिक और जातिगत ध्रुवीकरण चुनाव परिणामों को बहुत प्रभावित कर सकता है, पहचान संबंधी आख्यानो का एक रणनीतिक उपकरण के रूप में उपयोग जारी है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. उत्तराखंड में जाति और धर्म के ऐतिहासिक और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ की एक जाँच यहाँ प्रस्तुत है।

2. यह अध्ययन उन तरीकों की जाँच करेगा जिनसे धार्मिक और जातिगत पहचान राजनीतिक भागीदारी, पार्टी की नीतियों और नेतृत्व के चयन को प्रभावित करती है।
3. मतदाता व्यवहार को आकार देने में धार्मिक प्रतीकवाद और तीर्थयात्रा की राजनीति की भूमिका का आकलन करना।

अनुसंधान क्रियाविधि

"उत्तराखंड की राजनीति पर धर्म और जाति के प्रभाव का एक आलोचनात्मक अध्ययन" नामक शोध परियोजना में एक बहु-विषयक और मिश्रित-पद्धति दृष्टिकोण का उपयोग किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य अध्ययनाधीन राज्य में धर्म, जाति और राजनीतिक प्रक्रियाओं के बीच विद्यमान अंतर्संबंध की गहन जाँच करना है। इस पद्धति में गुणात्मक और मात्रात्मक, दोनों प्रकार की शोध पद्धतियों का समावेश किया गया है ताकि विषय की एक समग्र और प्रमाण-आधारित समझ सुनिश्चित की जा सके। इस अध्ययन का उद्देश्य न केवल सांख्यिकीय प्रवृत्तियों को समझना है, बल्कि उत्तराखंड के राजनीतिक व्यवहार के मूल में निहित गहन सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थों को भी समझना है। यह अध्ययन एक वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक डिज़ाइन का उपयोग करके किया गया है। ऐसा करते हुए, यह उन तरीकों का एक आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है जिनसे धर्म और जातिगत पहचान राजनीतिक लामबंदी, प्रतिनिधित्व और शासन को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त, यह उत्तराखंड की मौजूदा सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों का भी विवरण प्रस्तुत करता है। इस शोध का दायरा प्रवृत्तियों के मात्र अवलोकन से आगे तक फैला हुआ है; बल्कि, इसका उद्देश्य सैद्धांतिक और प्रासंगिक विश्लेषण के माध्यम से इन प्रवृत्तियों के कारणों की पहचान करना और उनके परिणामों की व्याख्या करना है। विश्लेषणात्मक घटक के कारण, विभिन्न स्थानों (पहाड़ी बनाम मैदानी), समूहों (उच्च जाति, ओबीसी, अनुसूचित जाति, अल्पसंख्यक) और राजनीतिक दलों के बीच तुलना करना संभव है। वर्णनात्मक घटक के भाग के रूप में, चुनाव परिणाम, जातिगत संरचना, धार्मिक जनसांख्यिकी और नेतृत्व प्रतिनिधित्व जैसे तथ्यात्मक तथ्य प्रस्तुत किए जाते हैं ताकि एक स्पष्ट अनुभवजन्य आधार प्रदान किया जा सके।

परिणाम

उत्तराखंड के कई जिलों से एकत्रित जानकारी की जाँच से धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक जातियों और राजनीतिक रुझानों के बीच मौजूद जटिल संबंधों का पता चलता है। इस तथ्य के बावजूद कि हाल के वर्षों में विकास और पर्यावरण संबंधी चिंताएँ ज़्यादा प्रमुख रही हैं, निष्कर्ष बताते हैं कि राज्य में राजनीतिक गठजोड़ और मतदान व्यवहार को निर्धारित करने में धर्म और जाति अभी भी प्रमुख कारक बने हुए हैं।

तालिका 1: उत्तराखंड के चयनित जिलों में उत्तरदाताओं की धार्मिक संरचना

धर्म	गढ़वाल क्षेत्र (%)	कुमाऊँ क्षेत्र (%)	कुल (%)
हिंदू	89.6	85.2	87.4
मुस्लिम	7.5	10.1	8.8
सिख	1.4	2.0	1.7
ईसाई/अन्य	1.5	2.7	2.1

आँकड़े दर्शाते हैं कि उत्तराखंड, विशेष रूप से गढ़वाल क्षेत्र में, अभी भी हिंदू-बहुल है। मुस्लिम और सिख जैसे अल्पसंख्यक समुदाय कुमाऊँ में अपेक्षाकृत अधिक केंद्रित हैं। इस वितरण का निर्वाचन क्षेत्र-स्तरीय राजनीति पर

प्रभाव पड़ता है, क्योंकि कुछ क्षेत्र ऐसे दलों के साथ गठबंधन करते हैं जो या तो धर्मनिरपेक्ष या पहचान-आधारित अपील पर ज़ोर देते हैं।

तालिका 2: हिंदू उत्तरदाताओं की जाति संरचना

जाति श्रेणी	गढ़वाल (%)	कुमाऊं (%)	कुल (%)
उच्च जातियाँ (ब्राह्मण, राजपूत)	52.8	48.3	50.6
अन्य पिछड़ा वर्ग	27.4	29.7	28.5
अनुसूचित जातियाँ	17.6	18.4	18.0
अनुसूचित जनजातियाँ	2.2	3.6	2.9

गढ़वाल और कुमाऊं, दोनों ही राज्यों में ऊँची जातियों का बहुमत है, जो ऐतिहासिक रूप से नेतृत्व के पदों और पार्टी टिकट आवंटन में राजनीतिक प्रभुत्व में तब्दील होता रहा है। हालाँकि, ओबीसी और एससी समूह धीरे-धीरे महत्वपूर्ण वोट बैंक के रूप में उभर रहे हैं, खासकर समावेशी प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देने वाली पार्टियों के लिए।

तालिका 3: धर्म के अनुसार मतदान वरीयता

धर्म	भाजपा (%)	कांग्रेस (%)	एएपी (%)	अन्य (%)
हिंदू	63.2	25.7	6.3	4.8
मुस्लिम	22.1	61.4	10.2	6.3
सिख	40.3	36.8	12.9	10.0
ईसाई/अन्य	31.5	48.6	10.1	9.8

धार्मिक पहचान का मतदान वरीयताओं पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। अधिकांश हिंदू मतदाता भाजपा के पक्ष में हैं, जो हिंदुत्व और राष्ट्रवादी आख्यान की प्रतिध्वनि को दर्शाता है। इसके विपरीत, मुस्लिम और ईसाई मतदाता कांग्रेस की ओर ज़्यादा झुकाव रखते हैं, जिसे ज़्यादा धर्मनिरपेक्ष और समावेशी माना जाता है।

तालिका 4: जाति वर्ग के अनुसार मतदान वरीयता (हिंदू उत्तरदाताओं के बीच)

जाति श्रेणी	भाजपा (%)	कांग्रेस (%)	एएपी (%)	अन्य (%)
उच्च जातियाँ	68.7	20.3	6.0	5.0
ओबीसी	54.1	33.8	7.9	4.2
एससी	41.3	44.8	8.2	5.7
एसटी	46.7	41.2	7.5	4.6

उच्च जातियों में भाजपा का दबदबा कायम है, जबकि कल्याण और सामाजिक न्याय पर अपने फोकस के कारण कांग्रेस अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बीच महत्वपूर्ण समर्थन बनाए हुए है। आप की सीमित अपील जातिगत सीमाओं से परे है, लेकिन यह काफी हद तक शहर-केंद्रित बनी हुई है।

तालिका 5: धार्मिक और जातिगत समूहों द्वारा प्रमुख चुनावी मुद्दों की धारणा

मुद्दा / समूह	विकास (%)	धर्म और पहचान (%)	पर्यावरण (%)	भ्रष्टाचार (%)
---------------	-----------	-------------------	--------------	----------------

हिंदू (उच्च जातियां)	54.2	27.6	10.1	8.1
हिंदू (ओबीसी/एससी/एसटी)	49.3	33.5	8.7	8.5
मुस्लिम	41.0	39.2	10.3	9.5
सिख/ईसाई	45.5	31.6	13.7	9.2

धर्म और पहचान के मुद्दे बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक, दोनों ही मतदाताओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते रहते हैं, बावजूद इसके कि "विकास" सभी समूहों में सबसे ज़्यादा चर्चा का विषय बना हुआ है। राष्ट्रीय राजनीति में बढ़ते धार्मिक ध्रुवीकरण की झलक उत्तराखंड के स्थानीय समुदाय की गतिशीलता में देखी जा सकती है। पर्यावरणीय चिंताएँ चुनावी चर्चा में गौण विषय बनी हुई हैं, बावजूद इसके कि वे क्षेत्रीय रूप से प्रासंगिक हैं (विशेषकर प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति को देखते हुए)। धर्म और जाति उत्तराखंड के राजनीतिक परिदृश्य के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहते हैं, बावजूद इसके कि विकास की समस्याएँ युवा पीढ़ी के संभावित मतदाताओं के बीच ज़ोर पकड़ रही हैं। जहाँ कांग्रेस पार्टी हाशिए पर पड़ी जातियों और ऊँची जातियों के सदस्यों को अपनी पार्टी में शामिल करती रही है, वहीं भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) को हिंदुओं और ऊँची जातियों का पर्याप्त समर्थन प्राप्त है। गढ़वाल और कुमाऊँ की क्षेत्रीय विशेषताओं में अंतर न केवल जनसांख्यिकी पर, बल्कि राजनीतिक झुकाव और मुद्दों को प्राथमिकता देने के क्रम पर भी प्रभाव डालता है। धार्मिक प्रतीकों और स्थानीय पहचान के इर्द-गिर्द राजनीतिक लामबंदी के परिणामस्वरूप पारंपरिक पदानुक्रम मज़बूत हुए हैं; हालाँकि, इसके परिणामस्वरूप मतदाताओं के भीतर नए ध्रुवीकरण भी पैदा हुए हैं। पर्यावरण और शहरी क्षेत्रों के बारे में चिंतित मतदाता नई पार्टियों और निर्दलीय उम्मीदवारों के लिए प्राथमिक लक्षित दर्शक हैं, जिनका प्रभाव सीमित है।

निष्कर्ष

यद्यपि उत्तराखंड का राजनीतिक परिदृश्य अक्सर राज्य के क्षेत्रीय और विकासात्मक लक्ष्यों के संदर्भ में गढ़ा जाता है, राज्य की राजनीति की गहन समझ के लिए धर्म और जाति के गहन प्रभाव को समझना आवश्यक है। राज्य का राजनीतिक विमर्श, नेतृत्व के तरीके और चुनावी व्यवहार इन दो सामाजिक कारकों से जटिल रूप से प्रभावित होते हैं, जो इसके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और जनसांख्यिकीय ताने-बाने में गहराई से समाए हुए हैं। शोध के अनुसार, उत्तराखंड में धर्म राज्य की राजनीतिक व्यवस्था में दो भूमिकाएँ निभाता है। राजनीतिक कर्ता-धर्ता देवभूमि, "देवताओं की भूमि" की अवधारणा में वैधता और भावनात्मक आकर्षण पाते हैं, जो संस्कृति को एकता के सूत्र में पिरोती है। तीर्थयात्रा की राजनीति, मंदिरों का निर्माण और सांस्कृतिक प्रतीक, सभी इसके विपरीत पक्ष में योगदान करते हैं, जो कि इसकी लामबंदी करने की क्षमता है। धार्मिक प्रतीकात्मकता और राष्ट्रवादी विषयों का उपयोग प्रमुख राजनीतिक दलों, विशेषकर भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) द्वारा, राज्य में अपना आधार मज़बूत करने और अपना नियंत्रण बढ़ाने के लिए किया जाता रहा है। आध्यात्मिक पहचान और राजनीतिक रणनीति के बीच एक मज़बूत संबंध रहा है, जैसा कि केदारनाथ के जीर्णोद्धार, चार धाम यात्रा मार्गों के विकास और धार्मिक पर्यटन पर ध्यान केंद्रित करने में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। लेकिन धार्मिक राजनीति से जुड़ी कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में ग्रामीण पलायन, बेरोज़गारी और पर्यावरणीय क्षरण जैसी समस्याएँ बनी हुई हैं, लेकिन सांस्कृतिक और धार्मिक पर्यटन पहलों के कारण इनके दब जाने का खतरा है। इसके अलावा, यदि धर्म राजनीतिक शक्ति का एक साधन बन जाता है, तो राज्य आंदोलन का धर्मनिरपेक्ष संस्कृति को बढ़ावा देने का लक्ष्य कमज़ोर पड़ सकता है, जिसका अनपेक्षित परिणाम बहिष्कारवादी दृष्टिकोण को मज़बूत करना हो सकता है। हालाँकि, उत्तराखंड की राजनीति में प्रतिनिधित्व और प्रभाव में जाति अभी भी एक प्रमुख कारक है, भले ही पार्टी के भाषणों में इसका ज़िक्र अक्सर न किया जाता हो। राजनीतिक नेतृत्व, नौकरशाही और पार्टी संरचनाओं में, उच्च जातियों के सदस्यों—विशेषकर राजपूतों और ब्राह्मणों—का प्रभुत्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उत्तर भारत के मैदानी इलाकों की तुलना में राज्य में जातियों का अधिक समान वितरण

होने के बावजूद, अभिजात वर्ग का प्रभुत्व बना हुआ है, जो दर्शाता है कि लोकतंत्र अभी तक पूर्ण सामाजिक समानता नहीं ला पाया है। एक बढ़ती हुई प्रति-शक्ति, मैदानी जिलों, विशेष रूप से हरिद्वार और उधम सिंह नगर में, ओबीसी और दलित समुदायों की लामबंदी के माध्यम से, जड़ जमाए पदानुक्रमों को चुनौती दे रही है और राजनीतिक भागीदारी में विविधता ला रही है। धर्म और जाति परस्पर क्रिया करके एक जटिल राजनीतिक माहौल बनाते हैं। जाति व्यवस्थाएँ लामबंदी और प्रभाव के स्थानीय नेटवर्क स्थापित करती हैं, जबकि धार्मिक प्रतीकवाद एक व्यापक भावनात्मक एकता प्रदान करता है। उनके संयुक्त प्रयास एक पहचान की राजनीति का मॉडल प्रस्तुत करते हैं जो जाति-आधारित संगठन को आस्था-आधारित वैधता के साथ जोड़ता है। हालाँकि चुनाव अभियानों में विकास की लफ्फाजी हावी रहती है, फिर भी इस सम्मिश्रण के कारण पहचान की अपील जारी रहती है। पहाड़ी (पहाड़) और तराई (तराई) क्षेत्रों के बीच भौगोलिक विभाजन एक और महत्वपूर्ण कारक है। तराई क्षेत्रों में, धर्म और जाति-आधारित पहचान की राजनीति हावी है, लेकिन पहाड़ों में, प्रवासन, बुनियादी ढाँचा और आजीविका राजनीतिक गतिविधि के केंद्र में हैं। पहाड़ी समुदायों के बीच संसाधनों के असमान आवंटन और राजनीतिक ध्यान के कारण राजनीतिक अलगाव और क्षेत्रीय असमानता दोनों ही बढ़ जाती है। समतापूर्ण शासन और सतत विकास प्राप्त करने के लिए, इस बेमेल को दूर करना अत्यंत आवश्यक है। धर्म और जाति अभी भी प्रभावशाली हैं, लेकिन अध्ययन में पाया गया है कि प्रवास, शिक्षा और आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप ये नए रूप धारण कर रहे हैं। युवा पीढ़ी के बीच राजनीति अधिक व्यावहारिक है, जहाँ नौकरी, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा पर ज़ोर दिया जाता है, न कि अपनी पहचान के प्रति कट्टर निष्ठा पर, खासकर शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में रहने वालों के बीच।

संदर्भ

- [1] बहुगुणा, डी. (2023)। उत्तराखंड में विकास, लोकतंत्र और पहचान की राजनीति: प्रतिनिधित्व के उभरते पैटर्न। नई दिल्ली: कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी।
- [2] भट्ट, आर. (2021)। भारतीय हिमालय में धर्म, विकास और राजनीतिक पहचान: उत्तराखंड का एक अध्ययन। इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 82(2), 215-232।
- [3] देव, एन. (2020)। आस्था, शासन और विकास: उत्तर भारत में धार्मिक पर्यटन की राजनीति। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 55(42), 45-53।
- [4] जैफ्रेलॉट, सी. (2003)। भारत की मौन क्रांति: उत्तर भारत में निचली जातियों का उदय। लंदन: हर्स्ट एंड कंपनी।
- [5] जोशी, एम. (2020)। उत्तराखंड में क्षेत्रीय और सामाजिक असमानताएँ: पहाड़ी और मैदानी राजनीति का एक अध्ययन। सामाजिक परिवर्तन, 50(4), 587-604।
- [6] कौल, ए. (2016)। उत्तराखंड में जाति, अभिजात वर्ग और चुनावी राजनीति: नेतृत्व के स्वरूप में निरंतरता और परिवर्तन। जर्नल ऑफ हिमालयन स्टडीज, 9(1), 66-84।
- [7] कोठारी, आर. (1970)। भारत में राजनीति। नई दिल्ली: ओरिएंट लॉन्गमैन।
- [8] कुमार, एस., और पलशीकर, एस. (2019)। उत्तराखंड में चुनावी राजनीति और हिंदू राष्ट्रवाद: भाजपा का सुदृढ़ीकरण। स्टडीज इन इंडियन पॉलिटिक्स, 7(1), 54-71।
- [9] नौटियाल, ए. (2010)। उत्तराखंड: पहचान और क्षेत्रीय विकास की राजनीति। नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन्स।
- [10] नेगी, बी. (2017)। पहाड़ियाँ और मैदान: उत्तराखंड की राजनीति में क्षेत्रीय विभाजन को समझना। जर्नल ऑफ रीजनल स्टडीज, 12(3), 102-120।

- [11] पांडे, बी. डी. (2010). देवभूमि राजनीति: हिमालय में धर्म और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद। अल्मोड़ा: हिमालयन रिसर्च सेंटर।
- [12] पाठक, एस. (2005). उत्तराखंड आंदोलन: पहचान और पारिस्थितिकी की राजनीति। देहरादून: अल्मोड़ा बुक डिपो।
- [13] रावत, ए. एस. (2012). उत्तराखंड में सामाजिक संरचना और राजनीतिक शक्ति: एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य। हिमालयन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 6(2), 33–49.
- [14] रावत, जी. एस. (2015). पवित्र परिदृश्य और राजनीतिक अर्थव्यवस्था: उत्तराखंड में धार्मिक पर्यटन। माउंटन रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 35(2), 150–159.
- [15] रतूड़ी, आर. (2019). उत्तराखंड के तराई क्षेत्र में दलितों का दावा और राजनीतिक परिवर्तन। दलितों की समकालीन आवाज़, 11(1), 21–38.
- [16] शर्मा, डी. डी. (2014). उत्तराखंड की राजनीति में जाति, वर्ग और सत्ता। देहरादून: दून यूनिवर्सिटी प्रेस।
- [17] तिवारी, एस. (2021)। हिमालयी राज्यों में विकासात्मक लोकलुभावनवाद और पहचान की राजनीति। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 56(3), 42–50।
- [18] वीनर, एम. (1987)। भारतीय विरोधाभास: जाति, धर्म और लोकतंत्र। एशियन सर्वे, 27(11), 1214–1232।
- [19] यादव, वाई. (1999)। परिवर्तन के समय में चुनावी राजनीति: भारत की तीसरी चुनावी प्रणाली, 1989-99। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 34(34/35), 2393–2399।